<u>अनुवाद के लिए कविताएं</u>

- **रिश्ता**

वह बिल्कुल अनजान थी।

मेरा उससे रिश्ता बस इतना था

कि हम एक पंसारी के गाहक थे

नए मुहल्ले में!

वह मेरे पहले से बैठी थी-

टॉफी के मर्तबान से टिककर

स्टूल के राजसिंहासन पर!

मुझसे भी ज्यादा

थकी दीखती थी वह

फिर भी वह हंसी।

उस हंसी का न तर्क था,

न व्याकरण,

न सूत्र,

न अभिप्राय!

वह ब्रह्म की हंसी थी।

उसने फिर हाथ भी बढ़ाया,

और मेरी शॉल का सिरा उठाकर

उसके सूत किए सीधे

जो बस की किसी कील से लगकर

भृकुटि की तरह सिकुड़ गए थे।

पल - भर को लगा: उसके उन झुके हुए कंधों से

मेरे भन्नाये हुए सिर का

बेहद पुराना है बहनापा।

- प्रेम इण्टरनेट पर

शास्त्रीय प्रेमियों की तरह

मनोयोगपूर्वक

दबा नहीं सकता वह मेरा सर,

गूंथ नहीं सकता मेरी चोटी,

मटके में पानी भी भरवा नहीं सकता,

हां, मल नहीं सकता भेंगरिया के पत्ते

मेरी बिवाइयों पर,

पर वह हंसा सकता है मुझको

मेरे विकटतम क्षणों में

अच्छे चुटकुले भेजकर!

फॉरवर्ड कर सकता है भास्वर अंश मुझको

कितनी नायाब किताबों से।

ले सकता है मॉक इंटरव्यू

असली वाली अन्तर्वीक्षा के पहले!

मुझको सलाहें दे सकता है,

मोती लुटा सकता है मुझ पर

चुस्त फब्तियों के।

दोष गिना सकता है मेरे

मस्ताना निरपेक्षता से!

राममोहन राय और ईश्वरचन्द्र विद्यासागर,

कार्वे और ज्योतिबा फुले वाले धीरज से

वह चला सकता है आन्दोलन

मेरे ही नवजागरण को निवेदित!

एक ठठेरे वाली दत्तचित्तता से

वह कर सकता है पच्चीकारी

मेरे वजूद के दरके भांडे पर!

घर में बहुत भीड़-भाड़ अगर हो तो

रह सकता है सात पर्दों में

काबिल ऐयार की तरह!

बिजली बिल खो जाए मेरा तो

लाल बुझक्कड़ वाली मग्न क्षिप्रता से

कह सकता है मूंदकर आंखें-

'देखो तो चौके के टेबुल की बाईं तरफ की

किताबों पर, कल जब तुम छौंक रही थी सब्जी

और उद्धरण मुझको सुना रही थी उन किताबों से,

बिजली का टैरिफ बढ़ जाने पर

नाक धुनी थी तुमने

एक ब्रेक - सा बीच में लेकर!'

जब भी मेरी नौकरी छूटे,

जब मुझको मार पड़े,

या गालियों की घटा घुमड़े

या फिर लथेड़ लिया जाए मुझे

कीचड़ में बीच सड़क-

वह मुझको कर सकता है एक एस. एम. एस ऐसा

जो मेरे डूबते हुए मन को एक ही झपाके में

रहट की तरह ऊपर खींचे!

बातें भी हो सकती हैं उड़नखटोला

और शब्द हो सकते हैं फारस का घोड़ा-

ये उसकी बातों ने मुझको सिखाया!

एक दिन मुझसे कहा उसने

"प्राचीन वेल्श में हरवाहे

बैलों का मनुहार करते हुए

चलते थे बैलों के आगे,

झुक - झुककर गाते बजाते हुए वे चलते थे

कि बैल हो लें प्रसन्न

और खेत में प्रफुल्ल कदमों से उड़ते हुए - से चलें!

मिट्टी पर उड़ते हुए कदमों से

बैलों का चलना,

मीठी फसल देता है, अजी मोहतरमा!

बैलों के साथ हो जबर्दस्ती तो

मिट्टी जाती है रूठ!

जिसके भी कन्धे जुआ हो,

मनुहार उसका है वाजिब, बिलकुल वाजिब, है न?"

- कुछ तो

कुछ तो हो।

कोई पत्ता तो कहीं डोले,

कोई तो बात होनी चाहिए जिन्दगी में अब-

बोलने में समझने-जैसी कोई बात,

चलने में पहुँचने - जैसी

करने में हो जाने-जैसी कोई तरंग।

या मौला, क्या हो रहा है यह

ओठ चल रहे हैं लगातार।

शब्दों से अर्थ खेलते हैं कुट्टी - कुट्टी

बात कहीं पहुँच नहीं पाती.

जो देखो वो है सवार-

कोई किसी के कंधे पर,

कोई ऐन आपके ही सिर!

सब हैं सवार,

सब जा रहे हैं कहीं-न-कहीं

कहीं बिना पहुंचे हुए!

जैसे कि जार निकोलाई ने

जारी किया हो फरमान-

“जो भी किसान

दे नहीं पाए हैं लगान,

जाएँ वहां, न जाने कहाँ

लायें उसे, न जाने किसे"

क्या लाने निकले थे घर से, हम भूल गए

कुट्टी-कुट्टी खेलते-से मिले हमको

मिट्टी से पेटेंटेड बीज!

वहीं कहीं मिट्टी में

मिट्टी-मिट्टी से हुए सब अरमान।

गोदान के पहले होरियों ने

कर दिया आत्मदान।

आत्महत्या एक हत्या ही थी

धारावाहिक!

सुदूर पश्चिम से चल रहे है अग्नि बाण:

ईश्वर - से अदृश्य।

हर जगह है ट्रैफिक जैम-

सड़कों से टूट गया है

अपने सारे ठिकानों का वास्ता।

सदियों से बिलकुल खराब पड़े

घर के बुजुर्ग लैंडलाइन की तरह

हम भी दे देते हैं गलत-सलत सिग्नल।

कोई भी नंबर लगाए

कहीं दूर से

तो आते हैं हमसे

सर्वदा ही व्यस्त होने के

कातर और झूठे संदेशे!

काहे की व्यस्तता!

पर रिसीवर ऑफ हो

कुछ भी नहीं होता

या कि टूट गया हो निजी कनेक्शन

सार्वजानिक बक्से से

तो ऐसा होता है, है न-

लगातार आते हैं व्यस्त होने के गलत सिग्नल।

कुछ तो हो!

कोई पत्ता तो कहीं डोले!

कोई तो बात होनी चाहिए जिन्दगी में अब!

बोलने में समझने-जैसे कोई बात!

चलने में पहुँचने-जैसी

करने में कुछ हो जाने-जैसी तरंग!

- **तलाशी**

उन्होंने कहा- "हैंड्स अप!"

एक-एक अंग फोड़कर मेरा

उन्होंने तलाशी ली!

मेरी तलाशी में मिला क्या उन्हें?

थोड़े से सपने मिले और चाँद मिला-

सिगरेट की पन्नी-भर,

माचिस भर उम्मीद, एक अधूरी चिट्ठी

जो वे डीकोड नहीं कर पाए

क्योंकि वह सिंधु घाटी सभ्यता के समय

मैंने लिखी थी-

एक अभेद्य लिपि में-

अपनी धरती को-

“हलो धरती, कहीं चलो धरती,

कोल्हू का बैल बने गोल-गोल घूमें हम कब तक?

आओ, कहीं आज छूटते हैं तिरछा

एक अगिनबान बन कर

इस ग्रह-पथ से दूर!

उन्होंने चिट्ठी मरोड़ी

और मुझे कोंच दिया काल-कोठरी में!

अपनी कलम से मैं लगातार

खोद रही हूँ तब से

काल कोठरी में सुरंग!

कान लगा कर सुनो-

धरती की छाती में क्या बज रहा है!

क्या कोई छुपा हुआ सोता है?

और दूर- पार सुरंग के-

दीख रही है कि नहीं दीखती

एक पतली रोशनी

कैसी खुशनुमा कनकनी है

और खुला-खिला घास का मैदान !

हो सकता है, एक लोकगीत गुजरा हो

कल रात इस राह से!

नन्हे-नन्हे पाँव उड़ते हुए - से गए हैं

ओस नहाई घास पर!

फिलहाल, बस एक परछाईं

ओस के होंठों पर

थरथराती-सी बची है!

पहला एहसास किसी सृष्टि का

देखो तो -

टप-टप

टपकता है कैसे!

- वृद्ध दम्पती का प्रेमालाप

'हारे-थके आए, खिड़की से कुर्सी सटाई और बैठ गए,

खोल लिया कुरते का एक बटन,

पोंछ लिया कुरते की बाँह से पसीना !

यदि होता यह रीतिकाल, मैंने सोचा,

काम-काज की कोई चिन्ता नहीं होती,

दिन-भर तुम घर में ही रहते,

पचपन तरह के उपमान छाँटते,

मुझको भी लगता कि मैं कुछ हूँ,

कुछ तो मुगालतें जरूरी हैं जीवन में!

बतरस- नदी और छन्द - वंद, फूल - वूल,

चिड़िया, तितली, चाँद, हिरण-विरण,

धरती की पूरी हरीतिमा

उपमानों से भी गायब हो गई तो बचेगा क्या ?

तुमने मेरी सोच सुन ली

और हल्का मुस्कुराए

चूँकि मैं कंघी किए जा रही थी,

तुमने मजाक में कहा

“रूपसि, तेरा घन केशपाश...!"

मैं भी हँसी और बोली,

'अच्छा तो इतने दिनों में सुध आई,

कुछ बात भी बनायी तो कब

अब जबकि कंघी लगाते ही

इन बादलों में

चम से चमक जाती है सफेद बिजली

नई बहुरिया की फुर्ती से!"

“चाँदी का तार ये मुबारक हैं", तुम बोले,

"ये ही देंगे तुमको

एकदम नए वजूद में प्रवेश का वीसा-

आकाश खुला-खुला होगा वहाँ,

धूप बहुत नम होगी

और प्रसन्न बहेंगी हवाएँ।

कनखियों से देखेंगे हमको

खट्मिट्ठे बब्बूगोशे-

एक ही टहनी पर सटे हुए,

एक साथ पकने की गन्ध में नहाए,

तरह-तरह से झेलते

वक्त और बारिश और हवा के थपेड़े!

'कुमारसम्भव' का उजला कबूतर

सिर पर मँडराएगा अपने,

लाल-लाल आँखें नचाता

उड़ेगा इधर से उधर।

"अच्छा, अब बस भी करो,

तुम तो मत इतना उड़ो,

मुझको चौके तक जाने दो,

तीन बार खौला,

खौल-खौल सूख चुका पानी,

क्या कहेगी केतली रानी-

कितने गपोड़ी हैं ये दोनों प्राणी!"

- **नायिका भेद**

"आचार्य, हम इनमें कोई नहीं-

कोई नहीं, कोई नहीं, कोई नहीं-

मुग्धा, प्रगल्भा, विदग्धा या सुरतिगर्विता,

परकीया भी नहीं, न स्वकीया ही!

मुग्धाएँ जब थीं हम-

देनी थीं हमको परीक्षाएँ

बोर्ड के सिवा भी कई,

संस्थानों में प्रवेश की परीक्षाएँ देते हुए

हमें फुर्सत ही नहीं मिली

आनन्दसम्मोहिता या रतिकोविदा होने की।

रात में जगीं भी हम तो मोटी पुस्तकों में सर खपाती हुईं,

चौराहे तक निकलीं भी जब अंधेरे में-

मुदिता या अभिसारिका भाव से तो नहीं,

घर के कपड़ों में बस निकल पड़ीं चुइंगम

चुइंगम लाने की खातिर कि नींद भगे!

x x x x

प्रारब्धयौवन हुई जब हम

नौकरी के सौ झमेले थे सर पर!

शास्त्रीय स्वकीयाएँ तो तन-मन से करती थीं

बस अपने पतियों की, हम करती हैं तन-मन-धन से सेवा

परिजन-पुरजन की, ससुराल नैहर की,

घर की और बाहर की भी! स्नेह तिरोहित तो नहीं हो गया,

सिर्फ फ़ाइल गया वह

दीगंत तक-

पेड़ - पौधे, जीव-जन्तु,

चर या आचार-

परिवार में ही

शामिल हैं सब!

x x x x

स्वाधीनपतिका नहीं, न ही प्रवस्यपतिका

आनन्दसम्मोहित भी नहीं, न ही कलहान्तरिता !

कलह कभी करने का भी जी हुआ तो किससे करतीं

बाल-बुद्धि ही थे परमेश्वर हमारे,

लगे ही नहीं वे कभी भी बराबर के-

बौड़म परमेश्वरों को गोद में धारे

आज जिस बाजार में हम खड़ी हैं न, आचार्य जी,

उसमें पहेली नहीं, चुटकुला है हरेक आदमी,

तुमुल कोलाहल-कलह का ऐसा

घनघोर-सा सिलसिला है यहाँ,

कबीरजी की लुकाठी से

सुलग रहे हैं बॉनफायर!

x x x x

हाँ तो मैं यह कह रही थी-

कि कुट्टिनी खंडिता वगैरह भी

हम तो नहीं हैं,

हमारा अलग से ही बनना होगा कोई प्रभेद:

फूट गए हैं घड़े

सिकहर पर टंगे नौ रसों के,

घाल-मेल सा हो गया है रसधारों का-

वीर में वात्सल्य बहता है,

शृंगार में बाहती है कुछ भयावहता,

शांत भी वीभत्स या रौद्र से जा मिल है!

हर क्षण हमारा है नौ रसों का कॉकटेल

और हम भी हैं शायद मिश्र-प्रजाति वाले

बाँस का टूसा!

सुना था कहीं,

चीन देश में होती है

बाँसों की ऐसी प्रजाति

जिसका टूसा पड़ा राहत है

पचपन बार धरती के भीतर

और फिर जब एक दिन चमकती है कहीं बदली,

धरती की छाती दरक जाती है,

फोड़-फाड़कर सारी चट्टानें

झाँकता है वह तभी

धरती के बाहर !

शायद वही बाँस का टूसा

हों हम भी !